18

विश्वकर्मावतार कोकसवर्धकी: कैलास मंदिर, वेरूळ (एलोरा) के निर्माता शिल्पी

नी.पु.जोशी

शिल्प एवं वास्तुकला के सभी उपासक एलोरा के कैलासनाथ मंदिर से परिचित हैं। इसे 'पर्वतकाव्य' (rockpoem) भी कहा गया है। महाराष्ट्र के दौलताबाद से लगभग बारह मील की दूरी पर स्थित तीस से अधिक गुफाओं वाला यह स्थान वेरूळ (हिन्दी वेरूल) नाम से जाना जाता है, पाश्चात्य विद्वानों ने इसे 'एलोरा' नाम से सम्बोधित किया है। इसका मूल नाम 'एलापुर' है जहाँ घृष्णेश्वर/घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंग विद्यमान है। वेरूळ शब्द की व्युत्पत्ति अलग है, जिसका विवेचन हम आगे करेंगे।

सह्याद्रि पर्वत शृंखला के एक भाग को उत्कीर्ण कर यहाँ ईसा की 8 वीं से 11 वीं शती के बीच छोटी-बड़ी मिलाकर तीस से ऊपर गुफाएँ (लेण - मराठी लेणें) बनायी गयीं। इनमें बारह (क्रमांक 1-12) बौद्ध, सत्रह (क्रमांक 13-29) ब्राह्मण, तथा पाँच (क्रमांक 30-34) जैन गुफाएँ हैं। ब्राह्मण गुफाओं में दशावतार (क्रमांक 15) तथा कैलास (क्रमांक 16) का विशेष महत्त्व है। इनका निर्माण राष्ट्रकूट नृपति दन्तिदुर्ग (ई.सन् 733-757) तथा कृष्ण प्रथम (सन् 757-773) द्वारा कराया गया था। यहाँ तत्कालीन प्रतिमा-वैभव को शाब्दिक रूप में नहीं अपितु आँखों को लुभाने वाले गोचर रूप में संजोकर रखा गया है। इन गुफाओं में शिल्पकला के साथ वास्तुकला के भी बेजोड़ दर्शन होते हैं। दर्शक स्तंभित होकर सोचने लगता है कि यह कलासृष्टि मानुषी है या दैवी ! शब्दों में वर्णन संभव नहीं, क्योंकि 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी'। बड़ोदा ताम्रपट के अनुसार स्वयं शिल्पी भी विस्मृत हुआ कि इसे उसने कैसे बनाया।[1] -

एवं मया कथमहो कृतमित्य कस्मात्
कर्ताऽपि यस्य खलु विस्मयमाप शिल्पी।।

कुछ ऐसे ही भाव को एक दंतकथा अपने ढंग से निरूपित करती है। "एक बार स्वर्ग की अप्सराएँ इन्द्र की इस शर्त के साथ सह्याद्रि के परिसर में उतरीं कि सूर्योदय के पूर्व अर्थात् रात्रि में ही उन्हें स्वर्ग में लौट आना होगा। अप्सराएँ यहाँ नाचने गाने लगीं, पर प्रकृति के सौंदर्य से वे इतनी मोहित हो गयीं कि उन्हें समय का ध्यान नहीं रहा। रात बीत गई और सूर्योदय हो गया। फल यह हुआ कि वे सब पत्थर बन कर यहीं रह गयी।"[2]

सम्राट् दंतिदुर्ग और कृष्ण प्रथम दोनों शिवोपासक थे। उनके द्वारा कला निर्मिति के लिए वेरूळ का चुनाव कदाचित इस लिए भी किया गया हो कि वहाँ से केवल दो मील की दूरी पर ज्योतिर्लिंग घृष्णेश्वर या घुश्मेश्वर का स्थान है। आश्रयदाताओं के शैव होने के कारण ब्राह्मण गुफाओं में - विशेषतया दशावतार और कैलास में - शैव कथाओं का प्रामुख्य से उत्कीर्ण होना स्वाभाविक है। वैष्णव प्रतिमाएँ भी है पर बोलबाला रावणानुग्रह, कल्याणसुन्दर, नटराज, द्यूतक्रीड़ा आदि प्रतिमाओं का है।

प्रस्तुत लेख का लक्ष्य वेरूळ के कलावैभव का रसग्रहण या उसका निर्माण करानेवाले राष्ट्रकूट भूपालों की चर्चा करना नहीं है अपितु उन्हें उत्कीर्ण करने वाले विशेषतया कैलास की निर्मिति करने वाले महान् शिल्पी के नाम का परिचय कराना है। आश्चर्य है कि 6वीं-7वीं शताब्दी में बनी बादामी की गुफाओं में कोई 127 शिल्पियों के नाम खुदे हुए हैं[3] पर वेरूल की गुफाओं में शिल्पिनामों का पूरा अभाव है। यहाँ तक किसी शिल्पी प्रमुख का भी कहीं नामांकन नहीं है, तथापि लगता है कि इस महान् शिल्पी का नाम लोकमानस में बना रहा। फलतः वह नाम 'विश्वकर्मावतार

कोकसवर्धकी' इस रूप में कुछ शताब्दियों के बाद भी निर्मित मराठी के ग्रन्थकारों द्वारा कथाओं में उल्लिखित हुआ। विस्मृति के गर्भ में छिपे इन उल्लेखों को प्रकाश में लाने का कार्य रामचन्द्र चिंतामण ढेरे ने मराठी लेखों के माध्यम से किया। पी.व्ही.रानडे ने अंग्रेजी में लेख लिखा, तथा एम.एन.देशपाण्डे, दीपक कन्नाल, जी.बी.देगलूरकर, ढवळीकर, जामखेडकर आदि मराठी विद्वानों ने भी इस सामग्री का यथा स्थान उपयोग किया है। मेरे ज्ञान के अनुसार कैलास के उत्कीर्णक कोकसवर्धकी की हिन्दी जगत में पैंठ नहीं हुई है। प्रस्तुत लेख इसी अभाव की पूर्ति करने का प्रयत्न है।

लीळाचरित्र

महाराष्ट्र के सन्तों का एक प्राचीन संप्रदाय था 'महानुभाव' संप्रदाय। इसका मुख्य ग्रन्थ हैं तेरहवीं शती में लिखा गया महिभट्ट का 'लीळाचरित्र'।[4] प्राचीन मराठी का गद्य में लिखा गया यह ग्रन्थ महानुभाव संप्रदाय के आद्याचार्य चक्रधर स्वामी का जीवन चरित्र है। चक्रधर गोसावी, सर्वज्ञ, स्वामी, आदि नामों से भी जाने जाते थे। इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध (भाग 1, लीला 42-47) में उनके चरित्र की पचास से अधिक लीलाओं का विवरण है। इनमें आठ लीलाओं का वेरूल की गुफाओं से सीधा सम्बन्ध है। चक्रधर सन् 1268 में एलापुर पहुँचे थे तथा वहाँ उन्होंने अपने अनुयायी चांगदेव भट, आपदेव भट[5] बाइषा या महदाइसा[6] आदि के साथ चतुर्विधि मठ में दस महीनों तक निवास किया था। इस बीच स्वाभाविक रूप से उनका लेणों में आना-जाना तथा शिष्यों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर एवं शंका समाधान भी चलता रहा।

यहाँ की आठ गुफाओं में माणकेश्वर गुफा (कैलास) तथा अन्य गुफाओं के निर्माता कोकसवर्धकी का उल्लेख है।[7] चक्रधर स्वामी के कथनानुसार माणकेश्वर लेण में गुप्त घटपूजा (तांत्रिक साधना का एक प्रकार - कदाचित 'घटकंचुकी') होती थी। यहाँ सिद्धों का 'आगमसमो' होता था।[8] देशपाण्डे ने भी कैलास के रंगमण्डप में वामाचार से सम्बन्धित एक दृश्यफलक का उल्लेख किया है।[9] स्वामी ने शिष्यों को यह भी बतलाया कि कभी इस लेण में देवता के सामने नृत्य का भी आयोजन होता था। पूर्वकाल में माणकेश्वर को प्राप्त 'राजाश्रित वैभव' की बात चक्रधर के समय तक भूतकालीन हो गयी थी।

लीळा चरित्र में लोकपरंपरागत कुछ ऐसी लीलाओं का भी समावेश है जो भागवतपुराण में नहीं मिलती। इसी प्रकार की एक लीला है 'मर्गजासुरवध कथन'[10]। शिष्य के पूछने पर कि 'कृष्ण की वेणु (वंशी) को 'मर्गज' क्यों कहते हैं ? सर्वज्ञ ने समाधान किया कि मर्गजासुर नामक एक दैत्य वेणु (बाँस) में छिपकर कृष्ण को मारना चाहता था। कृष्ण ने उसका वध किया, और उसी बाँस से अपनी वेणु बनायी। इसी कारण कृष्ण की वेणु का नाम मर्गज पड़ा। मर्गजासुर के मित्र का नाम था द्रुमिल या दुर्मिळ। इसने अपने परिवार के साथ रहने के लिए वेरूल के एक लम्बे पर्वत का उत्कीर्णन किया था। मर्गजासुर पूर्वजन्म में कोकसवर्धकी था जो दीर्घतमा ऋषि के शाप के कारण दैत्य बना था। इसी संदर्भ में ढेरे का अनुमान है कि वेरूल के दुमार या धुमार लेण का सम्बन्ध द्रुमिल से है। यह भी मान्यता है कि वहाँ 'दुमार' नाम का शिल्पी रहा करता था।

चक्रधर स्वामी द्वारा सम्पन्न संचार क्रम का उल्लेख मुनिवास कोठी के ग्रन्थ 'स्थानपोथी' में विद्यमान हैं।[11] उन उल्लेखों के अनुसार रानडे ने पुराने नामोल्लेख के साथ वर्तमान गुफाओं को निम्नांकित रूप में गिनाया है:[12]

गुफा क्रमांक 10, वर्तमान विश्वकर्मा	-	कोकस वढ्ढकी चे (का) लेणे
गुफा क्रमांक 12, वर्तमान तीनताल	-	राजविहार लेणे
गुफा क्रमांक 14, वर्तमान रावण की खाई	-	जालंदरा चे लेणे
गुफा क्रमांक 15, वर्तमान दशावतार	-	धूमेश्वर
गुफा क्रमांक 16, वर्तमान कैलास	-	माणकेश्वर लेणे
गुफा क्रमांक 21, वर्तमान रामेश्वर	-	नागनाथा चे लेणे
गुफा क्रमांक 22, वर्तमान नीलकण्ठ	-	केदारनाथ लेणे
गुफा क्रमांक 27, वर्तमान नीलकण्ठ	-	जलसेना चे लेणे
गुफा क्रमांक 29, वर्तमान धुमार	-	शंकरेश्वर लेणे
जैन गुफाओं का परिसर व गुफाएँ	-	गोमतेश्वरा चे लेणे व कते (?) वसाई, मल्हार वसाई
शिवालय तीर्थ के पास ईदगाह	-	चतुर्विधि मठ (चक्रधर का दस महीनों का निवास स्थान)

ज्ञानेश्वरी तथा अमृतानुभव

तेरहवीं शताब्दी के महाराष्ट्रीय सन्तों में ज्ञानदेव या ज्ञानेश्वर (सन् 1275-96) का नाम अग्रगण्य है। अनेक अभंगों (विशिष्ट छंद में निर्मित गेय पद्य) के अतिरिक्त इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं भगवद्गीता पर लिखी गयी विस्तृत टीका ज्ञानेश्वरी (पृ.43-51) या भावार्थदीपिका तथा अमृतानुभव। इन कृतियों में अप्रत्यक्ष रूप से विपरीत प्रक्रिया से निर्मित (अर्थात शिखर से आरंभ तथा भूतल पर समाप्ति) कैलास मंदिर के संकेत हैं। इसकी विस्तृत चर्चा ढेरे, रानडे तथा देशपाण्डे द्वारा की गयी है। संकेत रूप में ज्ञानेश्वरी के अठारहवें अध्याय में वर्णित 'गीतारत्न प्रासाद' के वर्णन को देखा जा सकता है (ज्ञानेश्वरी, VIII.30-49)। अमृतानुभव का एक उदाहरण हम नमूने के लिए उद्धृत कर रहे हैं। ज्ञानेश्वर कहते हैं कि जिस प्रकार एक पर्वत को काट कर देवता देवालय तथा सम्पूर्ण परिवार बनाया जाता है, उसी प्रकार भक्ति का भी विचार क्यों न किया जाय' (देव देऊळ परिवारु, कीजे कोरून डोंगरु, तैसा भक्तिचा विचारु, कां न व्हावा - अमृतानुभव, ओवी 42)।[13]

कथाकल्पतरु, लेखक कृष्ण याज्ञवल्की (शक 1470-1535, सन् 1549-1613)

मराठी के 'ओवी' छंद में लिखे इस ग्रंथ के दूसरे स्तबक का 15वां अध्याय माणकेश्वर (कैलास) मंदिर और उसके निर्माता की कहानी बतलाता है।[14] इसका शीर्षक है 'कथाकल्पतरु विद्याधर कथा'। कुल 146 ओवियों वाले इस प्रकरण का समाप्ति लेख है - 'येळूराव विद्याधर परंपरा'। कहानी का संक्षिप्त रूप निम्नांकित है:

दक्षिण देश के रीतपुर गाँव में धनेश्वर नामक एक व्यापारी ब्राह्मण रहता था। उसके पुत्र का नाम था विद्याधर। पिता की मृत्यु के बाद पुराने कागजों में उसे अपनी जन्मपत्री मिली, जिसमें उसके द्वारा भविष्य में होने वाले ब्रह्महत्या, मातृगमन तथा सुरापान इन पापों का उल्लेख था। सावधान रहते हुए भी विद्याधर उनसे बच नहीं सका। अज्ञानवश ही सही पर उससे तीनों पाप हो गये। अगले जन्म में विद्याधर जलजपुर (विदर्भ का एलिचपुर) का राजा बना, नाम था 'राजा येळुराय'। इसकी रानी थी 'माणकावती'। राजा रानी आनन्द से जीवन व्यतीत कर रहे थे, पर एक रात पूर्व पापों के कारण राजा के सारे शरीर में कीड़े पड़ गये, किन्तु रात बीतने पर उसका शरीर पूर्ववत् स्वच्छ हो गया। अब तो यह नित्य की बात बन गयी। पति के आरोग्य के लिए रानी ने मनौती मानी कि राजा रोगमुक्त हो जाय तो वह एक शिवमंदिर बनवायेगी। एक बार शिकार के लिए राजा रानी महिषमाल (वेरूळ के निकट म्हैसमाल नामक गाँव) गये। उस परिसर के किसी विशिष्ट जल के स्नान पान के फलस्वरूप राजा व्याधिमुक्त हो गया। अब मनौती पूरी करनी थी। शिव की कृपा से प्रसन्न होकर रानी ने यह भी प्रण किया कि मंदिर के शिखर दर्शन के बाद ही वह अन्नजल ग्रहण करेगी। राजा के सामने समस्या खड़ी हो गयी। मंदिर का निर्माण और उसका शिखर दर्शन लंबी अवधि की बात थी जो रानी के प्राणों पर बीत रही थी। राजा ने अनेक शिल्पी बुलाए, अल्पावधि में शिखर दर्शन कराने की बात पर सबने हाथ उठा दिये; किन्तु एक शिल्पी सामने आया। उसने कहा 'डरिये मत, मैं सात दिन में रानी को शिखर दर्शन करा दूंगा।' 'कोकस वाढिया' नामक यह शिल्पी पैठण क्षेत्र के पुण्यस्तंभ (पुणतांबे) गाँव का निवासी था। वह गोदावरी में स्नान किये बिना भोजन नहीं करता था। ग्रंथकार लिखता है कि शिव का 'कीर्तन' निर्माण करने के लिए विश्वकर्मा ही इस रूप में अवतरित हुए थे। स्मरण रखें कि यहाँ प्रयुक्त कीर्तन शब्द पारिभाषिक है। कीर्तन अथवा कीर्ति शब्द का प्रयोग वासुदेवशरण अग्रवालजी के मतानुसार उत्कीर्ण गुफा, स्तूप, स्तम्भ आदि धार्मिक शिल्प कृतियों के लिए होता था।

कहानी के अनुसार कोकस वाढिया अपने साथ सात हजार (अन्यत्र यह संख्या चार हजार कही गयी है) शिल्पियों को लेकर पहुँचा और पर्वत पर 'उलटी जगती निर्माण तंत्र' से सातवें दिन राजा येळुराय की रानी माणिकावती को प्रथम शिखर दर्शन कराया। मंदिर पूर्ण होने पर इसका नाम हुआ माणिकेश्वर। येळुराय द्वारा बनवाये जाने के कारण स्थान को अभिधान मिला येरूळ या वेरूळ। कोकस शिल्पी ने यहाँ और भी लेण (कीर्ति) उत्कीर्ण किये। ग्रंथकार यह भी बतलाता है कि येळुराय के इस सुन्दर महापुण्य क्षेत्र येळुर की बात मार्कण्डेयपुराण के सिंहाद्रिखण्ड में है। (मार्कण्डेय पुराण का सिंहाद्रि खण्ड आज उपलब्ध नहीं है, पर नाम से प्रतीत होता है कि इसमें सह्याद्रि क्षेत्र की चर्चा रही होगी)।

इस कहानी में निम्नांकित बातें स्पष्ट होती हैं :

1. सोलहवीं शती के मध्य में वेरूळ का शिव मंदिर माणिकेश्वर नाम से जाना जाता था।

2. इसकी विशिष्ट शैली थी। प्रथम शिखर बना, उसके बाद व्युत्क्रम से नीचे उतरते हुए अन्य भाग बने।
3. इस लेण का निर्माता शिल्पी 'कोकसवाढिया' था जो अपनी निपुणता के कारण देवशिल्पी विश्वकर्मा का अवतार माना जाता था। उसके सहकर्मियों या शिष्यों की संख्या भी बहुत बड़ी थी।

शिल्पशास्त्र

मराठी के एक दूसरे प्राचीन ग्रंथ 'शिल्पशास्त्र' का लेखक विप्रगोविंद ग्रंथारंभ की मांगलिक ओवियों में अपने गुरु को नमन करने के बाद श्रीकष्ण की द्वारिका तथा इन्द्र, चन्द्र, सूर्य के मन्दिर बनाने वाले विश्वकर्मा के अवतार कोकवाढ़ी की बात करता है जो चार हजार शिष्यों के साथ पैठण में रहता था।[15] संस्कृत वर्धकी = वड्ढकी = वाढ़ई (मराठी) = बढ़ई (हिन्दी)।

गणेशपुराण, संजीवनी टीका

वेरूळ के माणिकेश्वर के एक भक्त ने गणेशपुराण पर संजीवनी नामक टीका लिखी है। समय है शक 1647 अर्थात सन् 1725। इस भक्त का नाम है यदु माणिकेश, यदुमाणिक अथवा यदुमाणिकेश्वर। ग्रंथ के प्रत्येक अध्याय के आरंभ में श्रीमहागणपति-महालया-माणिकेश्वर को नमन किया गया है; तथा उपसंहार में माणिकेश्वर की कृपा का स्मरण किया गया है। यह ग्रंथ वेरूळ प्रान्त में खड्गपूर्णा नदी के तट पर बसे नागापूर नामक गाँव में लिखा गया। सन्दर्भगत तीन देवता हैं - अजंता के निकटवर्ती रुद्रेश्वर लेण के महागणपति, नेवासे (प्रवरा के किनारे) की महालया तथा वेरूळ के कैलास के माणिकेश्वर। इस ग्रंथ से यह प्रमाणित होता है कि सन् 1725 तक कैलास के माणिकेश्वर लोगों के उपास्य थे।

वेरूळ के निकटवर्ती ज्योतिर्लिंग घुश्मेश्वर का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। ऐसी भी मान्यता है कि घुश्मेश्वर का असली स्थान वेरूळ का कैलास ही है। इस मान्यता को इस तथ्य से भी बल मिलता है कि आज कैलास के मंदिर में प्राचीन शिवलिंग नहीं है जिसकी राजा कष्ण प्रथम द्वारा सुवर्ण तथा रत्नों से अभ्यर्चना की जाती थी।[16] मूल लिंग माणिकेश्वर कब और कहाँ गया यह बात विचारणीय है।

एक प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि आज गुफा क्रमांक 16 को 'कैलास' के नाम से क्यों पहचाना जाता है? ढेरे का तर्क है कि आधुनिक संशोधकों द्वारा इसके कैलास अभिधान देने का कारण कृष्णराज के समय का एक शिलालेख है जिसमें कहा गया है कि इस लेण के निमित्त से मानो पृथ्वी पर कैलास को ही निर्मित किया गया है।[17]

यह भी विधान किया गया है कि पश्चिमाभिमुख कैलास मंदिर को राष्ट्रकूट कृष्ण प्रथम से संबद्ध होने के कारण कृष्णेश्वर/कण्हेश्वर भी कहा गया है।[18]

कोकश नाम की प्राचीनता

विचारणीय है कि माणिकेश्वर लेण (कैलास) के निर्माता शिल्पी का नाम कोकशवर्धकी व्यक्तिसंज्ञक था या उसके शिल्पशास्त्र में नैपुण्य के कारण प्राप्त हुआ था। इस विषय से संबंधित कुछ रोचक सूचनाएँ प्राचीन जैन साहित्य से मिलती है।[19]

ईसवी सन् की 5वीं - 6ठीं शती में निर्मित संघदासगणी के वसुदेवहिण्डी तथा बुद्धस्वामी के बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में कोकश वर्धकी के शिल्पचातुर्य की अद्भुत कथाएँ हैं। यहाँ कोकश शब्द के कुक्कुस, कुक्कस, कुक्कास, कोक्कस, कोकस, कोक्कोस, तथा पुक्कुस ये रूप मिलते हैं।

वसुदेवहिण्डी की कथा के अनुसार ताम्रलिप्ती में रहने वाले एक वर्धकी (बढई) का बेटा था धनद। माता पिता की मृत्यु के कारण वह एक सार्थवाह (व्यापारी प्रमुख) के यहाँ कण्डिशाला (धान कूटने का स्थान) में कुक्कुस (भूसा) खाकर रहता था। इसीलिए उसका नाम कोक्कस हुआ। कोक्कस ने सार्थवाह के साथ यवन देश की यात्रा की। वहाँ उसने एक बढ़ई से काष्ठकर्म का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। लौटने पर राजा की आज्ञा से उसने एक आकाशगामी रथ बनाया। घटना चक्र बढ़ता गया। आगे चलकर कोक्कस ने तोसली के राजा के यहाँ लकड़ी के दो आकाशगामी घोड़े भी बनाये पर अन्त में उसे मृत्यु का सामना करना पड़ा।

बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में कोक्कस का नाम पर्याय है पुक्कस। यह महासेन राजा का बढ़ई था। इसका दामाद निश्चिल सौराष्ट्र का था। निश्चिल ने किसी यवन से आकाशगामी यंत्र बनाना सीखा था। अपने कुक्कुट यंत्र से वह अकेला विहार करता था। बाद में उसने गरुड़ यंत्र बनाया जिसमें बैठकर केवल राजपरिवार ने ही नहीं अपितु सारे नगरजनों ने आकाश विहार किया।

छठी शती में जिन दासगणी द्वारा लिखित आवश्यकचूर्णी में भी कोकश की बात आती है। तदनुसार मूलरूप से (सोपारा) का निवासी शूर्पारक उज्जयिनी में रहता था। यहाँ वसुदेवहिंडी की कहानी से थोड़ा परिवर्तन है। कहा गया है कि कोकश के साथ राजा तथा रानी को आकाशविहार करते देखकर अन्य रानियों ने मत्सर से यंत्र की चाभी छिपा दी। फलतः वह यंत्र भूमि पर गिर गया।

हरिभद्र की आवश्यकवृत्ति तथा हरिषेण के बृहत्कथाकोश में कोकश की कहानियाँ समाविष्ट हैं। हरिषेणाचार्य ने उसे दिव्यवर्धकी बताते हुए उसके द्वारा स्त्रीरूप से युक्त शतयंत्र के निर्माण की बात कही है। कोकश विषयक सारी कथाओं तथा उनके प्रवचन काल से यह संकेत मिलता है कि ईसवी सन् की तीसरी-चौथी शताब्दी से ही कोकश का अद्‌भुत शिल्पाचातुर्य जनमानस में दंतकथाओं का विषय बन चुका था तथा कई शताब्दियों के बाद भी मराठी साहित्य में उसे देवशिल्पी विश्वकर्मा के अवतार के रूप में मान्यता मिल गई थी।

प्रतीत होता है कि शिल्पियों में कोकशकुल की एक परंपरा थी। आर.एन.मिश्र ने उत्कीर्ण अभिलेखों के आधार पर भारतीय वास्तुकला से संबंधित अनेक शिल्पियों के नामों की चर्चा की है।[20] इनमें एक शिल्पी है 'छितकु' जिसे कोकशकुलीय कहा गया है। छितकु शिला, काष्ठ एवं सुवर्ण तीनों माध्यमों से समान कौशल्य से प्रतिमा निर्माण करता था। उसे त्रिताल, सप्तलाल आदि तालमान का भी परिपूर्ण ज्ञान था। श्री मिश्र का कथन है कि उत्कीर्ण अभिलेखों में कोकश का प्रथम उल्लेख ई.स.1155 में मिलता है। इस सन्दर्भ में उन्होंने आगे के कुछ उल्लेखों में कई कोकशकुलीय शिल्पियों के नाम जैसे पल्हण, तल्हण, सोम, डल्हण, मन्मथ, दित्यन आदि गिनाये है। इनका कार्य क्षेत्र आज के मध्य प्रदेश राज्य में रहा।

कह सकते है कि कोकश शब्द परंपरा से शिल्पशास्त्र के अप्रतीम नैपुण्य का द्योतक था तथा श्रेष्ठ शिल्पियों को उसी सम्मानार्थक शब्द से संबोधित किया जाता था, जैसे आज भी शंकराचार्य के किसी पीठ पर आसीन संन्यासी को शंकराचार्य, श्रेष्ठ गायक को गन्धर्व अथवा आयुर्वेदीय चिकित्सक को धनवन्तरी कहते हैं। इसी प्रकार कदाचित माणिकेश्वर लेण या कैलास के कल्पक श्रेष्ठ शिल्पी के साथ कोकश नाम जुड़ गया है और उसे विश्वकर्मावतार भी कहा गया है।

सन्दर्भ

1. Deepak. H. Kannal, 'The Regional Lineages and Possible Masters at Kailāsanātha Temple of Ellora Caves, p.255.
2. P.V. Ranade, 'Echos of Ellora in Early Marathi Literature, Ellora Caves Sulptures and Architecture, Eds. Ratan Parimoo, Deepak Kannal, Shivaji Parikkar, Books and Books, New Delhi, 1988, p.108.
3. Sriniwas Padigar, 'Craftmens Inscriptions from Bādāmī: Their Significance', Ellora Caves, (Appendix).
4. M.N. Deshpande, 'Kailāsa, a Study in the Symbolism in the light of Contemporary Philosophical Concepts and Tradition, Ellora Caves, p.246; साथ ही पूर्वोद्‌धृत, क्रमांक 2, रानडे, पृ. 109.
5. रा. चिं. ढेरे, 'वीठल वीरु कथन; 'शोधशिल्प', विश्वकर्मा साहित्यालय पुणे, शके 1899, सन् 1977, पृ.62.
6. पूर्वोक्त संख्या 2, रानडे, पृ.109, 110.
7. पूर्वोक्त सं.2, रानडे, पृ.109-110.
8. रा. चिं. ढेरे, प्राचीन मराठी वाङ्मयात कैलास लेणे' 'शोधशिल्प', पृ.57-58
9. पूर्वोक्त सं.4, देशपाण्डे, पृ.246.
10. पूर्वोक्त सं.8, ढेरे, प्राचीन मराठी वाङ्मयात कैलास लेणे, पृ.56-57.

11. पूर्वोक्त सं.8, ढेरे, प्राचीन मराठी, पृ.52-59.
12. पूर्वोक्त सं.2, रानडे, पृ.112, रा. चिं. ढेरे, 'ज्ञानदेवाचा गीतारत्न प्रासाद', 'शोधशिल्प', पृ.43-51.
13. पूर्वोक्त सं.4, देशपाण्डे, पृ.240, 244.
14. पूर्वोक्त सं.8, ढेरे, प्राचीन मराठी., पृ.52-55.
15. पूर्वोक्त सं.8, ढेरे, पृ.55-56.
16. पूर्वोक्त सं.4, देशपाण्डे, पृ.245.
17. पूर्वोक्त सं.5, ढेरे, प्राचीन मराठी, पृ.59, R.G. Bhandarkar, 'The Rāshṭrakūṭa King Krishnaraja I and Elapur,' Indian Antiquary, 1883, p.229.
18. Encyclopedia of Indian Architecture, South India, Upper Draviḍa deśa, p.111
19. जैन साहित्य विषयक चर्चा श्री ढेरे द्वारा संकलित आधार पर उद्घृत है। देखिये पूर्वोक्त सं.5, 'शोधशिल्पाचे' पुनर्निरीक्षण, पृ.12-14.
20. R.N. Mishra, 'The Legacy of Indian Art,' Times of India, Sundey, October 3, 1976, p.13.